क्या बात है कि मिटती नहीं हस्ती हमारी !

राजेश शर्मा
सम्पादक
राष्ट्रदूत

> राष्ट्रदूत एक जज़्बा है, एक जुनून है, एक सोच है, एक ''थॉट'' है। एक शेर है, जिसे दोहराया जा सकता है, जिसे नापसंद भी किया जा सकता है, पर, उसकी हस्ती मिटायी नहीं जा सकती। राष्ट्रदूत केवल मशीनें, कम्प्यूटर, बिल्डिंग नहीं है। उसे तंग तो किया जा सकता है, खत्म नहीं किया जा सकता, केवल प्रशासनिक दबावों से, भय से।

सुमन दुबे, इकॉनमिस्ट, लेखक, जर्नलिस्ट, इंडिया टुडे को स्थापित करने वाली टीम के सदस्य तथा मुख्यधारा के अखबार, इण्डियन एक्सप्रेस, हिन्दुस्तान टाइम्स के पूर्व स्तम्भकार, राजीव गांधी के दून स्कूल के सहपाठी व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की ओरिजिनल टीम व थिंक टैंक के सदस्य कहते थे, ''राजस्थान अखबारों का कब्रिस्तान है।'' शायद नवयुग, लोकवाणी आदि का उदाहरण उनके दिमाग में रहा होगा, पर उनका कथन किसी हद तक सही ही था।

शायद इस बात का कुछ आभास हजारी बाबू को भी था, अतः ''राष्ट्रदूत'' प्रकाशित करने के लिए उनकी ''फर्स्ट चॉइस'' जयपुर नहीं बैंगलोर थी और उन्होंने बैंगलोर से हिन्दी में नहीं, अंग्रेजी में अखबार निकालने का मन बनाया। यह और कहानी है कि, कैसे जयनारायण व्यास, जो उनके लिए गुरुतुल्य व पिता तुल्य शख्सियत थे, ने हजारी बाबू का अखबार के बारे में ''सोच'' व मन बदला, और राष्ट्रदूत शुरु किया हजारी बाबू ने एक अगस्त 1951 को जयपुर से।

> राष्ट्रदूत कभी सरकार का लाड़ला नहीं बन सका, चाहे किसी गुट का या पार्टी का शासन रहा हो। राष्ट्रदूत के प्रति सरकारों का रुख सदा खुली ''शत्रुता'' और बेरुखी बर्दाश्त करने की सीमा के बीच ही झूलता रहा

आज सत्तर साल से राष्ट्रदूत खड़ा है, राजस्थान की वीर भूमि पर। फिर भी सुमन दुबे जैसे बड़े स्तम्भकारों व सम्पादकों का यह सोच भी किसी हद तक सही था कि, राजस्थान की धरती अखबारों के लिए खास उर्वरक नहीं है। क्योंकि 1950 से, अगर गिना जाए तो, कई अखबार आये और दफन होकर चले गये। जैसे वनस्थली विद्यापीठ के संस्थापक व राजस्थान के पूर्व मु.मंत्री हीरालाल शास्त्री का समाचार पत्र लोकवाणी और सुखाड़िया के राजनीतिक व प्रशासनिक सोच के प्रथम वफादार, जो बाद में कई बार मुख्यमंत्री रहे, हर देव जोशी से शुरु करवाया गया अखबार नवयुग, जिसके प्रबंध संपादक थे आर के मिश्रा, जो दिल्ली के एक जाने-माने पत्रकार, पेट्रिअट अखबार के संपादक तथा रिलायन्स ग्रुप थिंक टैंक ओ.आर. एफ. के संस्थापक व संचालक भी थे।

बहरहाल राजस्थान में मुख्य धारा से जुड़े इन दोनों अखबारों से भिन्न राष्ट्रदूत शायद इसलिए जीवित रह गया क्योंकि राष्ट्रदूत कभी सरकार का लाड़ला नहीं बन सका, चाहे किसी गुट का या पार्टी का शासन रहा हो। राष्ट्रदूत के प्रति सरकारों का रुख सदा खुली ''शत्रुता'' और बेरुखी बर्दाश्त करने की सीमा के बीच ही झूलता रहा, हालांकि यह सच है कि, जयनारायण व्यास की इस बात व तर्क से प्रभावित होकर कि ''अखबार बाजी व आतिशबाजी का एक ही सिद्धान्त होता है, घर के आंगन में की जाती है, जिससे घर वाले, परिवार वाले, परिजन व मौहल्ले वाले उसका आनंद ले सकें'', 1949 में अखबार शुरु करने हजारी बाबू कलकत्ता से जयपुर आए थे। पर जैसे गुरु वैसे ही चेला, अखबार को शुरु होने में दो साल लग गये। हालांकि मशीनें, कम्पोज़िंग में काम आने वाले टाइप, पेज बनाने के फर्मे, एक वैगन कागज, हजारीबाबू कलकत्ता से साथ लाये थे। कम्पोज़िटरों का जत्था मूलतः मैथिल ब्राह्मणों का था। ये लोग कलकत्ता में हिन्दी की पुस्तकें छापने वाले प्रिन्टिग प्रेसों में काम करते थे। सम्पादकीय विभाग में भी कई महारथी, जैसे शिवपूजन त्रिपाठी, दिनेश खरे, कालीचरण पांडेय आदि, बनारस के ''आज'' अखबार या आगरा के ''उजाला'' से लाये गये थे। कुछ स्थानीय प्रतिभा को भी ढूंढकर जोड़ा गया सम्पादकीय विभाग में, जैसे, सुमनेश जोशी, श्रीगोपाल पुरोहित, कैलाश मिश्रा, बिशन सिंह शेखावत, मास्टर हरी प्रसाद शर्मा, हरमल सिंह, कौशल किशोर शर्मा, मोहन लाल गुप्ता, जयसिंह एस राठौड़, युगल किशोर चतुर्वेदी, लप्पा बेडवाल, चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय, कपूरचंद कुलिश तथा युवा कवि तारा प्रकाश जोशी। नवयुग का प्रकाशन बन्द होने के बाद सिद्धनाथ तिवाड़ी, आनंद माधव मिश्रा, कमल किशोर जैन को भी साथ में लिया गया।

स्वाभाविक ही है, इस बहु प्रतिभाशाली, कई मतों वाली टीम को एक साथ रखकर अखबार निकालना काफी टेढ़ी खीर था और समय लेने वाला धैर्य का काम था। अखबार छापने के बाद, उसे जनता तक पहुंचाना भी आसान कृत्य नहीं था। दो ही बड़े न्यूज पेपर एजेन्ट थे, चांदपोल वाले चोंच महाराज, जो हिन्दुस्तान टाइम्स पब्लिकेशन के सोल एजेन्ट थे तथा जौहरी बाजार स्थित रॉयल स्टोर, जो टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप के वितरक थे।

जब दोनों से हजारी बाबू ने संपर्क किया, सुबह चार-पांच बजे तक छपने वाले राष्ट्रदूत को कम से कम छः बजे तक ग्राहक तक पहुंचाने के लिए, तो टका सा जवाब मिला, ''आपके अखबार में क्या खास बात है, जो सुबह उठते ही लोग पढ़ेंगे। सुबह का समय पूजा-पाठ, परिवार में बैठकर बातचीत करने का व ऑफिस और धंधे पर जाने की तैयारी का होता है। दिल्ली के अखबार 11-11.30 तक ट्रेन से आते हैं जिन्हें हम शाम तक घरों पर ''डिस्ट्रीब्यूट'' कर देते हैं और शाम को ऑफिस से लौट कर लोग तसल्ली से पढ़ते हैं।'' थक-हार कर, नये हॉकरों की टीम तैयार की गयी, जो सुबह -सुबह पाठकों तक अखबार की प्रति पहुंचा दे। अधिकतर ये नये हॉकर सरकारी दफ्तरों में काम करने वाले चपरासी आदि थे।

अखबार को ''पॉपुलर'' करने के लिए हजारी बाबू साइकिल से पुरानी बस्ती, रामगंज आदि रिहायशी कॉलोनियों में घूमे, अपना परिचय दिया कि, कैसे वे कलकत्ता से आये हैं अखबार निकालने तथा उनका सहयोग मांगा खबरों के लिए और कॉपियां खरीदने का अनुरोध किया।

मेहनत रंग लायी, पर दो साल लग गये अखबार जनता तक पहुंचाने में। उसके बाद लगभग एक सप्ताह में तीन बार मु.मंत्री व्यास का सुबह छः बजे फोन आता, हजारी बाबू को ललकारते हुए, ''क्या यह अखबार निकालने के लिए कलकत्ता से आये थे, चार दिन से एक भी सरकार विरोधी खबर नहीं है, **राष्ट्रदूत है या राजदूत।**''

राष्ट्रदूत के जन्म से द्वितीय विश्व युद्ध का

> अखबार को ''पॉपुलर'' करने के लिए हजारी बाबू साइकिल से पुरानी बस्ती, रामगंज आदि रिहायशी कॉलोनियों में घूमे, अपना परिचय दिया कि, कैसे वे कलकत्ता से आये हैं अखबार निकालने

अजीबोगरीब संबंध था। 1940 के दशक में जापानी फौजें, बर्मा से चढ़ते हुए इम्फाल तक पहुंच गयी थीं, तथा कलकत्ता पर जापानी लड़ाकू वायुयान कई ''सॉर्टी'' कर चुके थे। अफवाहों का बाज़ार गर्म था, कि जापानी यान कभी भी बमबारी कर सकते हैं। मारवाड़ी व्यापारी कलकत्ता खाली करने लगे थे। हजारी बाबू के पिता व चाचा, बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संस्थापक बन्धु, भी कलकत्ता छोड़ने का प्लान बनाने लगे थे। इस ''आक्रमण'' की दृष्टि

> हठी, स्वाभिमानी, सिद्धान्त के मामले में कोई समझौता नहीं करने वाला राष्ट्रदूत का पत्रकार हरदम अलग सा रहा। जिसे पूरी तरह से न तो राजनीतिज्ञ, न राजनेता और न ही अफसरशाही ही समझ पाई। अतः राष्ट्रदूत से इन लोगों का रिश्ता कभी खट्टा कभी मीठा, पर कभी भी आरामदेह (कम्फर्टेबल) नहीं रहा।

से जयपुर सेफ माना गया, तथा जयपुर में हल्दियों के रास्ते में गोधों के चौक में, एक बड़ी हवेली तथा जौहरी बाज़ार में दो दुकानें खरीदी गयीं, जयपुर से व्यापार चलाने की दृष्टि से।

जापानियों के आने की भगदड़ में, ब्रिटिश इन्फॉर्मेशन सर्विस ने अपना प्रचार तंत्र घटाना शुरू कर दिया था। ब्रिटिश इन्फॉर्मेशन सर्विस दक्षिण पूर्वी एशिया में अंग्रेजी सल्तनत के प्रचार तंत्र का स्तम्भ था। कलकत्ते में उनका विशाल, आधुनिक प्रेस था, जहां दक्षिण पूर्वी एशिया के लिए सारी प्रचार सामग्री छपती थी। ''वाइन्डिंग अप प्रक्रिया'' के तहत, इस विशाल प्रेस को बेचने के लिए टेण्डर आमंत्रित किये गये। पर, जब टेण्डर देने की अंतिम तारीख आयी, शहर में साम्प्रदायिक दंगे फैल गये। लेकिन हजारी बाबू अपना ऑफर वाला टेण्डर भर चुके थे। दंगे के कारण दूसरा कोई टेण्डर आया ही नहीं। करोड़ों की प्रिटिंग मशीनें, कुछ लाख रुपयों में मिल गयीं। पर, पिता ने, जो खासे सफल व्यापारी थे, दो टूक जवाब दे दिया, ''मेरे पास तुम्हारी ऊल-जलूल स्कीमों के लिए पैसा नहीं है।'' लेकिन चाचा को शायद युवा हजारी बाबू की काबलियत पर उनकी नेक-दिली पर ज्यादा विश्वास था और उन्होंने मशीनों के लिए ''डाऊन पेमैन्ट'' उपलब्ध कराया। साल भर में आधी मशीनें बेचकर,

हजारी बाबू ने रकम वापस कर दी तथा अपना प्रकाशन, जनवाणी प्रिन्टर्स शुरू किया। बाकी बची, कुछ मशीनों को लेकर हजारी बाबू जयपुर आये थे, राष्ट्रदूत खोलने।

उस समय जयपुर में कोई स्थापित अखबार नहीं था, अतः हॉकर होने का सवाल ही नहीं उठता था। बड़ी मुश्किलों से, काफी समझाइश के बाद हिन्दुस्तान टाइम्स व टाइम्स ऑफ इंडिया के एजेंटों को राजी किया, सुबह पांच बजे अखबार बांटने के लिए।

अखबार की पहचान बनाने के लिए, दिन भर साइकिल पर, हजारी बाबू ने जयपुर के संभ्रान्त नागरिकों के यहां चक्कर लगाकर घूम-घूम के अखबार का व स्वयं का परिचय दिया। मुन्नालाल मिश्र के नेतृत्व में मैथिल ब्राह्मणों की कम्पोज़िटरों की प्रारम्भिक टीम कलकत्ता से साथ आई थी, बाबूलाल मशीन मैन व उनके सहयोगी, जनवाणी प्रिन्टर्स से आए थे। गवरमैंट प्रेस बीकानेर के मशीन मैन हरिसिंह, शैतान सिंह, गोवर्धन सिंह आदि ने जनवाणी प्रिन्टर्स की मशीनों को ठोक बजाकर चलाने का जिम्मा संभाला। परंतु एडिटोरियल (जिसे राष्ट्रदूत का स्टाफ, पता नहीं क्यों हड्डी तोड़यल भी कहता था) की शुरू की मूल टीम में कलकत्ता की हिन्दी प्रचारिणी सभा के लोग थे। उनमें से ज्यादातर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के युवा लोग थे। जांबाज़ एवं उस समय के फैशन के अनुसार वामपंथी विचारधारा वाले, जैसे, शिवपूजन त्रिपाठी, दिनेश खरे, सिद्धनाथ तिवाड़ी, कालीचरण पाण्डेय, आनंद माधव मिश्रा आदि। लोकल टेलैन्ट (स्थानीय प्रतिभा) को धीरे-धीरे, परख-परख कर, हजारी बाबू अपने नवरत्नों में विभिन्न स्तर पर जोड़ते चले गये, मोहन लाल गुप्ता, कमल किशोर जैन, चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय (सम्पादक) सौभागमल जैन, युगल किशोर चतुर्वेदी (सम्पादक), तारा प्रकाश जोशी, जयसिंह एस. राठौड़, प्रकाश भण्डारी, कौशल किशोर भार्गव आदि। बाहरी लोगों का बहुमत था, ''स्थानीय टैलेन्ट'' की तुलना में। यह व्यवस्था शायद लाभदायक व आवश्यक थी, उस समय, राजस्थान में पत्रकारिता व पढ़ाई-लिखाई की पुरानी स्थापित परम्परा न होने के कारण। पर, स्थानीय प्रतिभा का धीरे-धीरे समावेश हुआ, जिसका लाभ, बाद में जयपुर में आये अखबारों, राजस्थान पत्रिका, नवज्योति, भास्कर आदि को मिला। बाहरी व स्थानीय के मिश्रण ने अनूठी पहचान बनायी, जिस पर छाप रही हजारी बाबू के व्यक्तित्व की ही। इस छाप ने ही मिटने नहीं दी कभी हस्ती राष्ट्रदूत की।

हठी, स्वाभिमानी, सिद्धान्त के मामले में कोई समझौता नहीं करने वाला राष्ट्रदूत का पत्रकार हरदम अलग सा रहा। जिसे पूरी तरह से न तो राजनीतिज्ञ, न राजनेता और न ही अफसरशाही ही समझ पाई। अतः राष्ट्रदूत से इन लोगों का रिश्ता कभी खट्टा कभी मीठा, पर कभी भी आरामदेह (कम्फर्टेबल) नहीं रहा। ''कम्फर्टेबल'' (नजदीकी-आत्मीयता) तो, तब बनता है रिश्ता जब व्यक्तित्व, मान्यताएं, विश्वास एक जैसा हो। आमतौर पर राजनीतिज्ञ का ''परसैप्शन'' समयानुकूल व परिस्थिति पर आधारित होता है, अतः बदलता भी रहता है। इसलिए राष्ट्रदूत के पत्रकार व खबरनवीस को कभी मित्र, कभी विरोधी और सदा ''अन्कम्फर्टेबल सवाल'' करने वाला माना जाता है, और उसकी ''उपयोगिता'' के अनुसार उससे व्यवहार होता है। उपयोगिता उस समय के राजनीतिक (परसीव्ड) हित, से आंकी जाती है।

और, मजे की बात यह है कि, राष्ट्रदूत से अपने अजीबोगरीब संबंध को किसी मु.मंत्री ने कैसे ''टैकल'' किया (निभाया) यह उस राजनेता की स्वयं की ''पर्सनैलिटी'' व मन:स्थिति पर निर्भर रहा। मु.मंत्री सुखाड़िया ने अपने सत्रह साल के शासन के प्रारम्भिक दिनों में पहले राष्ट्रदूत से राजनीतिक तरीके से निपटने का प्रयास किया। नवयुग अखबार शुरू करवाया, राष्ट्रदूत से मुकाबले के लिए, जिसके सम्पादक थे हरदेव जोशी। हजारी बाबू, स्वयं कांग्रेस में पूर्णतया सक्रिय नेता थे, तथा विधायक भी थे। अतः राष्ट्रदूत में सबसे पहले कांग्रेस की अंदर की खबर छपती थी। नवयुग सुखाड़िया समर्थक होने की वजह से, इतनी निर्भीकता से ये खबरें व विश्लेषण नहीं दे पाता था, अतः पी.सी.सी. में बाकायदा सोच बना कि, कांग्रेस पार्टी में सक्रिय नेता व राजनीतिज्ञ, जो वरिष्ठ पदाधिकारी भी हैं, किसी भी अखबार से सम्पादक के रूप में सम्बद्ध नहीं होंगे, क्योंकि, इससे अन्दर की बातें लीक होती हैं। हजारी बाबू उस समय जयपुर के जिलाध्यक्ष भी थे, तथा राष्ट्रदूत के सम्पादक भी, इसलिए उनको अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा। साथ में हरदेव जोशी भी नवयुग के सम्पादक के रूप में आगे काम नहीं कर सके।

पर, जैसा स्वाभाविक ही था, इससे राष्ट्रदूत की राजनीतिक पकड़ या रिपोर्टिंग कमज़ोर नहीं पड़ी। अतः सुखाड़ियाजी ने, ''इमोशनल एप्रोच'' काम में ली। हजारी बाबू के पिता रामदयाल जोशी से मिलने पटना गये,

> ''आप जैसा कहेंगे, वैसा ही करूंगा। पर पहले बता दें किस तारीख से राष्ट्रदूत का प्रकाशन बंद कर दूँ। एक ही राज्य में, अखबार भी चले और अपना उद्योग भी चलाऊँ यह संभव नहीं हो पायेगा।'' इस कथन से उद्योग लगाने वाला संवाद तो खत्म हुआ, पर, सुखाड़िया जी का राष्ट्रदूत कमज़ोर करो अभियान समाप्त नहीं हुआ।

तथा उनसे कहा, ''आपका परिवार, पुराना कांग्रेसी परिवार है, ''इन्डिपैन्डैंस मूवमैंट'' (स्वतंत्रता संग्राम) से भी पहले से। पर, हजारी बाबू, मेरी सरकार (कांग्रेस की सरकार) के खिलाफ हैं। हजारी बाबू की तरह मैं भी आपके पुत्र के समान हूँ। हमारे बीच झगड़े की कोई वजह नहीं। हमारा झगड़ा खत्म करवाइये।'' जोशी जी ने भी कूटनीतिक अंदाज में जवाब दिया ''दो भाईयों के झगड़े में बड़ों का बोलना उचित नहीं होता।''

सुखाड़िया जी ने फिर उद्योगपति जोशी की दुःखती रग पर हाथ रक्खा और तर्क दिया, ''राष्ट्रदूत में कोई कमाई नहीं है, घाटे का सौदा है। आप कोटा आकर बड़ा उद्योग लगाइये, अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप।'' यह तर्क काम कर गया, जोशी जी ने पीछा शुरू कर दिया अपने पुत्र का, और सुखाड़िया के ''ऑफर'' पर अमल करने का दवाब बनाने लगे। सैकड़ों चिट्ठियां लिखीं हजारी बाबू को, और हर सर्दियों में अपने गांव कांसली में वार्षिक प्रवास पर आने पर यह व्यक्तिगत प्रयास जारी रक्खा। चौथे-पाँचवें वार्षिक प्रवास के दौरान थक हार कर हजारी बाबू ने कह दिया, ''आप जैसा कहेंगे, वैसा ही करूंगा। पर पहले बता दें किस तारीख से राष्ट्रदूत का प्रकाशन बंद कर दूँ। एक ही राज्य में, अखबार भी चले और अपना उद्योग भी चलाऊँ यह संभव नहीं हो पायेगा।''

इस कथन से उद्योग लगाने वाला संवाद तो खत्म हुआ, पर, सुखाड़िया जी का राष्ट्रदूत कमज़ोर करो अभियान समाप्त नहीं हुआ। इस अभियान में अगला कदम था, अखबार के विज्ञापन बन्द करना। रामकिशोर व्यास ने इस बारे में अपना स्पष्टीकरण इस तरह दिया, ''मैं उस समय डी.पी.आर. मंत्री जरूर था, पर, इस आदेश में मेरा रोल नहीं था, मैं तो केवल ''मैसेज कैरिअर'' ही था, ऊपर से जो आदेश था, उसी की अनुपालना की थी। मैं तो आपके परिवार को उस समय से जानता हूँ, जब जोशी जी, गोधों के चौक की हवेली खरीदने जयपुर आये थे। मैं ही वह वकील हूँ जिसने सारी लिखा पढ़ी की कार्यवाही करवायी थी, कोर्ट में।''

बहरहाल सभी सरकारों ने राष्ट्रदूत को बर्दाश्त किया, पर मूक असहयोग रखा। रोज के इन सदमात ने राष्ट्रदूत को तंग तो किया, पर सत्य है मजबूत भी किया। अखबार जनता की पसन्द तो बना अपने निर्भीक ''स्टैण्ड'' के कारण, पर कभी सम्पन्नता नहीं पा सका, सरकार के लगातार असहयोग की वजह से। रही सही कसर पूरी करी दिल्ली-बम्बई की एजन्सियों ने। तब इनका मानना था कि हिन्दी अखबार का पाठक, साधारण आदमी है, जो उनके कीमती उत्पादनों का ग्राहक नहीं है, अतः इन अखबारों में हम क्यों विज्ञापन दें, विशेषकर राजस्थान में, जो उस समय वैसे भी गरीब लोगों का गरीब प्रदेश माना जाता था। जब राजस्थान पत्रिका जमने लगा, कुलिशजी ने भी विज्ञापन एजेन्सियों की इस तरह की बेइन्साफी को महसूस किया तथा मेरे से कई बार दुखी मन से अपनी इस व्यथा को शेयर किया।

कभी ''होस्टाइल'' (शत्रुतापूर्ण) रवैये, पर सदा ही सरकार के ''असहयोगी'' रूख के कारण, राष्ट्रदूत को कभी सरकारी सुविधा व सुख भोगने की आदत नहीं पड़ी, चाहे सरकारी विज्ञापनों का किस्सा हो, या उन विज्ञापनों के भुगतान का। राष्ट्रदूत काफी समय तक प्रदेश का सबसे बड़ा अखबार था इसलिए विज्ञापन देना बन्द तो नहीं किया जा सकता था। अतः जो सरकारी विज्ञापन उस स्तर के सब अखबारों को मिलते थे, वो राष्ट्रदूत की झोली में भी आते थे। इन विज्ञापनों में भी 70-80 प्रतिशत जयपुर के बाहर के विभागों के होते थे। इन विज्ञापनों का भुगतान जयपुर के बाहर स्थित सरकार के दफ्तरों, जैसे सार्वजनिक निर्माण, पी.एच.ई.डी. व राजस्थान स्टेट इलैक्ट्रिसिटी बोर्ड, खान विभाग आदि, के इंजीनियर करते थे। पर विज्ञापन जारी करता था डी.पी.आर. (डायरैक्टर पब्लिक रिलेशन)। डी.पी.आर. विज्ञापन रिलीज़ करने तक ही अपनी जिम्मेवारी मानता था। इन विज्ञापन का भुगतान दिलवाने में डी.पी.आर. अपनी असमर्थता ही दिखाता था। अतः धीरे-धीरे कालान्तर में सरकारी विज्ञापनों की देनदारी करोड़ों में पहुंच गयी और जब राष्ट्रदूत इस बारे में बहुत हल्ला करता तो डी.पी.आर. डिपार्टमैंट को एक रिमाइन्डर भेज देता कि कृपया राष्ट्रदूत के इन बिलों का भुगतान करें। रिमाइन्डरों की कॉपी हमें दे दी जाती थी ताकि हम उन भुगतानों का पीछा करें (परस्यू करें)। पर जालौर से जैसलमेर, बांसवाड़ा से बाड़मेर तक फैले हजारों इंजीनियरों व अफसरों का अखबार कैसे पीछा करे। दूसरी ओर अन्य अखबारों को वो विज्ञापन रिलाज़ होते थे जिनका भुगतान डी.पी.आर. स्वयं ही करता था। उन विज्ञापनों के भुगतान अखबारों के दफ्तरों में स्वयं ही पहुंचा दिये जाते थे।

ऐसी असुविधाएँ व पिन प्रिक्स (पिन चुभाने वाली) रोजमर्रा की बातें थीं। पर शायद मु.मंत्री से मतभेद रखने का यह ''जायज़'' खामियाज़ा माना जाता था। लेकिन यह तपन केवल विज्ञापन तक ही सीमित नहीं रहती थी। राष्ट्रदूत के लेबर के सारे छोटे- बड़े मामले हाईकोर्ट तक जाकर ही खत्म होते थे, क्योंकि श्रम विभाग सरकारी महकमा था तथा लेबर कोर्ट का जज, रिटायर्ड न्यायाधीश, सरकार द्वारा नियुक्त होता था। उसका सरकार की ओर देखना कोई अनहोनी बात नहीं थी। अतः राष्ट्रदूत का हर लेबर सम्बन्धित मामला श्रम विभाग होते हुए लेबर कोर्ट में जाकर विपरीत आदेश पाता था, इसलिए हाइकोर्ट जाना लाजमी सा हो जाता था। पर इन मुकदमों के बावजूद हजारी बाबू जी को लोग बड़े आदर व श्रद्धा से देखते थे। इसका सजीव उदाहरण थी, राष्ट्रदूत में एक बार हुई लम्बी हड़ताल, जिसमें प्रिंटिंग प्रेस के सभी कर्मचारी, कम्पोज़िटर, मशीन मैन, चौकीदार आदि शामिल थे। सम्पादकीय विभाग व दफ्तर के लोग सम्मिलित नहीं थे स्ट्राइक में। जब सवा महीना होने को आया तो कुछ बेचैनी सी फैलने लगी हड़ताल पर गये कर्मचारियों में, क्योंकि महीने के अंत में तनख्वाह नहीं मिली थी। मैनेजमैंट से बात करके, काम पर लौटने की फुसफुसाहट शुरू हुई। जयपुर छोटा शहर था बात फैली तथा मु.मंत्री तक भी पहुंची। मु. मंत्री के प्रतिनिधि के रूप में वरिष्ठ पत्रकार आर.के. मिश्रा को हड़तालियों के पास भेजा गया, पैसे लेकर यह संदेश देने कि, ''वेतन की परवाह मत करो हम देंगे। एक महीने की तनख्वाह की राशी मैं लेकर आया हूँ। अगले महीने और आगे भी देते रहेंगे। पीछे मत हटना।'' हड़तालियों ने पैसे रख लिये और रात भर सोच विचार कर सुबह पैसे वापस कर आये। प्रेस के हड़ताली कर्मचारी रात को सरयू नारायण हल्दिया, विज्ञापन विभाग के वरिष्ठ अफसर से मिले तथा मु.मंत्री की ओर से आया प्रस्ताव बताया। हल्दिया जी ने कहा ''क्या तुम लोगों को हजारी बाबू से शिकायत है? क्या उनसे बात की? वे घर के, अपने राष्ट्रदूत परिवार के बड़े हैं। कुछ तकलीफ हो तो उन्हें बताओ। अब तक परिवार के बीच की बात है घर में निपटा लो। अगर बाहर वालों का हस्तक्षेप हुआ तो पता नहीं बात क्या रूख ले ले, और कहां जाकर रूके।'' हल्दिया जी का परामर्श सबने स्वीकार किया और मु. मंत्री का एक और प्रयास विफल हुआ।

सदा ''गैर मैत्रीपूर्ण'' प्रशासन से घिरे होने के कारण, राष्ट्रदूत की अनूठी, पारदर्शी ''मैनेजमैंट स्टाइल'' विकसित हुई। क्योंकि, राष्ट्रदूत यदि कुछ चालाकी करना या ''डण्डी'' मारना अपनाता तो इन छिद्रों से, कवच भेदकर घायल करने का रास्ता सब सरकारें बहुत पहले चुन लेतीं। यह मौका नहीं देना ही, जीवित रहने का गुरूमंत्र था। पर एक अजीबोगरीब ''कोरोलरी'' (सहयोगी निष्कर्ष) यह भी था, इस स्टाइल का कि, कोई साथी, संगी नहीं बना, दिक्कत के समय बगल में खड़ा होने वाला। आदर था, बड़ाई मिली पर दोस्ताना नहीं। यह वैसी ही स्थिति थी कि, हर व्यक्ति साधु का आदर करता है तथा साधु बनने को अति सराहनीय कर्म आंकता है, परंतु साथ ही दिल से चाहता है, कि, उसका खुद का होनहार बच्चा तपस्या करने वन में न जाये। पड़ोसी के बालक का जाना ज्यादा अच्छा है।

> असुविधाएँ व पिन प्रिक्स (पिन चुभाने वाली) रोजमर्रा की बातें थीं। पर शायद मु.मंत्री से मतभेद रखने का यह ''जायज़'' खामियाज़ा माना जाता था। लेकिन यह तपन केवल विज्ञापन तक ही सीमित नहीं रहती थी। राष्ट्रदूत के लेबर के सारे छोटे- बड़े मामले हाईकोर्ट तक जाकर ही खत्म होते थे, क्योंकि श्रम विभाग सरकारी महकमा था तथा लेबर कोर्ट का जज, रिटायर्ड न्यायाधीश, सरकार द्वारा नियुक्त होता था। उसका सरकार की ओर देखना कोई अनहोनी बात नहीं थी।

लगभग सभी ने राष्ट्रदूत से जुड़ना तो इज़्ज़त व गर्व (ऑनर) की बात मानी, वैचारिक दोस्ती तो मानी, पर ''अपराध'' में शामिल होने वाला ''एका'' नहीं पनपा, प्रगाढ़ता नहीं उभरी। वैचारिक मैत्री सबसे पहले चटकती है, समय की संभावित मार के डर से या ''परसीव्ड'' लाभ की संभावना से। एक अजीब सिद्धान्त पनपा, हमारे दोस्त तो हमारे हैं ही, राष्ट्रदूत का उनसे क्या लेना-देना। पर हमारे दुश्मन राष्ट्रदूत के भी दुश्मन हैं। नतीजा यह निकला कि, राष्ट्रदूत से या उसके किसी कर्मचारी के लेखन से कभी न कभी ''हर्ट'' हुए, सत्ता में बैठे कृत संकल्प लोगों की संख्या निरन्तर बढ़ती गयी। पर, अखबार के चाहने वाले, आम पाठक व जनता की

> कभी ''होस्टाइल'' (शत्रुतापूर्ण) रवैये, पर सदा ही सरकार के ''असहयोगी'' रूख के कारण, राष्ट्रदूत को कभी सरकारी सुविधा व सुख भोगने की आदत नहीं पड़ी, चाहे सरकारी विज्ञापनों का किस्सा हो, या उन विज्ञापनों के भुगतान का।

तादाद इन कृत संकल्पित लोगों से कहीं ज्यादा थी। अतः राष्ट्रदूत में जो छपता था और छपता है, उसका व्यापक असर होता था और होता है, और उसको (राष्ट्रदूत को) हानि पहुंचाने वाले व ''इन्तकाम'' लेने वाले तिलमिला कर रह जाते हैं।

किसी की वफादारी का आधार वह जुनून होता है, जो संघ से सम्बद्ध लोगों में, या वामपंथ के कट्टर अनुयायियों में होता है। दूसरा आधार होता है, वह आर्थिक सुख-सुविधा, जो, संस्था उस व्यक्ति को देती है, ज़रुरत व नीयत से ज्यादा। आर्थिक सुख-सुविधा देने का सामर्थ्य तो सरकार ने कभी बनने ही नहीं दिया। वैचारिक मतभेद, बाल की खाल निकालने का हुनर, शायद कभी भी वैचारिक एकता स्थाई होने नहीं देता। कुछ कम ही लोग हैं जो, व्यक्तिगत सम्बन्धों को वैचारिक मतभिन्नता से प्रभावित नहीं होने देते, जैसे ''रैडिकल ह्यूमनिस्ट'' विचारधारा के प्रवर्तक एम.एन. रॉय व हजारी बाबू की मित्रता। कुछ रिश्ते, आदर व सम्मान पर आधारित होते हुए भी, प्रगाढ़ता की स्थिति प्राप्त करते हैं। जैसे व्यासजी व हजारी बाबू का सम्बन्ध। या केवल शुद्ध दोस्ताना, जैसे रामधारी सिंह दिनकर व बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री विनोदानन्द झा व बरकत साहब से हजारी बाबू की आत्मीयता।

> कुछ कम ही लोग हैं जो, व्यक्तिगत सम्बन्धों को वैचारिक मतभिन्नता से प्रभावित नहीं होने देते, जैसे ''रैडिकल ह्यूमनिस्ट'' विचारधारा के प्रवर्तक एम.एन. रॉय व हजारी बाबू की मित्रता। कुछ रिश्ते, आदर व सम्मान पर आधारित होते हुए भी, प्रगाढ़ता की स्थिति प्राप्त करते हैं। जैसे व्यासजी व हजारी बाबू का सम्बन्ध। या केवल शुद्ध दोस्ताना, जैसे रामधारी सिंह दिनकर व बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री विनोदानन्द झा व बरकत साहब से हजारी बाबू की आत्मीयता।

ऐसे रिश्ते सबसे नहीं हो सकते, यह, शायद मजबूरी थी राष्ट्रदूत की। वो लोग खरे नहीं उतरे, जिनसे आशा नहीं थी कि वो मौके पर निराश करेंगे। जैसे पूर्व संपादक शिव पूजन त्रिपाठी व दिनेश खरे। इसलिए , जोधपुर के रंगरेली काण्ड, जिसमें उस समय के महारथी, पेट्रोल पम्प शृंखला के मालिक ताम्बी, कन्हैया लाल जैन, मुन्ना लाल गोयल आदि संलग्न बताये जा रहे थे, में जब त्रिपाठी जी की भूमिका संदिग्ध मानी गई, तो भारी आघात पहुँचा।

खरे साहब, बनारस के ''आज'' अखबार से राष्ट्रदूत में आये थे। एक प्रतिभाशाली अनुभवी पत्रकार थे तथा राष्ट्रदूत का सम्पादक बनने की योग्यता रखते थे। पर ''मॉरल टर्पिट्यूड'' (नैतिक परंपरा का उल्लंघन) का आरोप लगा था, स्थानीय अखबारों में, जैसे, दैनिक मशाल। यह क्षम्य हो जाता हजारी बाबू की ओर से, हालांकि, हजारी बाबू जयपुर के ''कंज़रवेटिव व्यक्तित्व'' से भली भांति परिचित थे।

लेकिन, इसी समय, खरे साहब ने राष्ट्रदूत को सुखाड़िया उन्मुख बनाना भी शुरू किया, बिना हजारी बाबू की सहमति के। यह त्रुटि भी शायद माफ हो जाती, हजारी बाबू की ओर से, क्योंकि लम्बी छूट देकर आदमी को बदलने में उनका विश्वास था। पर, उस वक्त, राष्ट्रदूत के मैनेजिंग एडिटर के रूप, काम देखने की जिम्मेवारी, छोटे भाई बनवारी बाबू को सौंपी जा रही थी, हजारी बाबू द्वारा। अमेरिका की कोलम्बिया युनिवर्सिटी से एम.बी.ए. अध्ययन करके लौटे बनवारी बाबू अखबार को भी कॉरपोरेट कंपनी की तरह चलाने का सोच रखते थे।

बनवारी बाबू ने लिखा-पढ़ी शुरू कर दी, अनुशासनात्मक कार्यवाही के तहत और फिर खरे साहब को बर्खास्त कर दिया। मुकद्मा चला सुप्रीम कोर्ट तक। राष्ट्रदूत की तरफ से अशोक सेन और खरे साहब की ओर से कृष्णा मेनन ने पैरवी की। मुकदमे का फैसला भी आया। पर जैसा कि इन बड़े मुकदमों में होता है, यह गूढ़ बात, कि कौन जीता और कौन हारा, जानने के लिए खुद का वकील होना जरूरी था।

धीरे-धीरे, सत्तर साल के इस सफर में व्यक्तित्व इतना कठोर हो गया कि, दोस्तों की मदद स्वीकार करने में अटपटा लगने लगा। सुखाड़िया शासन के समाप्त होने पर, जब परम मित्र बरकत साहब मु. मंत्री बने, तब दो बार मैत्रीपूर्ण सहायता का हाथ बढ़ाया उन्होंने, क्योंकि, पारदर्शिता की नीति के कारण राष्ट्रदूत की आर्थिक हालत किसी से छुपी हुई नहीं थी। बरकत साहब की सरकार ने राष्ट्रदूत की मदद करने की दृष्टि से राष्ट्रदूत की पुरानी ''मोनो कम्पोज़िंग'' मशीन खरीदने का प्रस्ताव भेजा गवरमैंट प्रैस के लिए। बाद में राष्ट्रदूत की गोधों के चौक की हवेली को ''कोऑपरेटिव डिपार्टमैंट'' के कॉलेज के लिये, किराये पर लेने की बात की। बरकत साहब ने हजारी बाबू को राज्य सभा की सीट का ऑफर भी भेजा, खादी घर के संचालक सचिव व रिश्तेदार, राधेश्याम जी के मार्फत। पर, हजारी बाबू ''अन्कम्फर्टेबल'' थे इन ऑफर्स से, जैसा कि इस शेर में वर्णित है:

**''मेरे दाग़े दिल से है रोशनी,
इसी रोशनी से है ज़िन्दगी,
मुझे डर है ए मेरे चारागर,
ये चिराग़ तू ही बुझा न दे।''**

राष्ट्रदूत एक जज़्बा है, एक जुनून है, एक सोच है, एक ''थॉट'' है। एक शेर है, जिसे दोहराया जा सकता है, जिसे नापसंद भी किया जा सकता है, पर, उसकी हस्ती मिटायी नहीं जा सकती। राष्ट्रदूत केवल मशीनें, कम्प्यूटर,

> धीरे-धीरे, सत्तर साल के इस सफर में व्यक्तित्व इतना कठोर हो गया कि, दोस्तों की मदद स्वीकार करने में अटपटा लगने लगा। सुखाड़िया शासन के समाप्त होने पर, जब परम मित्र बरकत साहब मु. मंत्री बने, तब दो बार मैत्रीपूर्ण सहायता का हाथ बढ़ाया। पर, हजारी बाबू ''अन्कम्फर्टेबल'' थे इन ऑफर्स से

बिल्डिंग नहीं है। उसे तंग तो किया जा सकता है, खत्म नहीं किया जा सकता, केवल प्रशासनिक दबावों से, भय से। पर, अगर कभी राष्ट्रदूत मिटा तो, अप्रासंगिक होने से मिटेगा और टीम के बिखरने से मिटेगा, क्योंकि :

**''मेरा अज़्म इतना बुलन्द है,
कि पराए शोलों का डर नहीं।
मुझे ख़ौफ़ आतिशे-गुल से है,
ये कहीं चमन को जला न दे।''**

पर, पथभ्रष्ट होना भी मुश्किल है, क्योंकि जब कभी भी पग डगमगाए, हजारी बाबू की यादों ने हाथ थाम लिया:

**''मेरे नसीब ने जब
मुझसे इंतकाम लिया,
कहाँ-कहाँ तेरी यादों ने
हाथ थाम लिया।''**

राजेश शर्मा

> मजे की बात यह है कि, राष्ट्रदूत से अपने अजीबोगरीब संबंध को किसी मु.मंत्री ने कैसे ''टैकल'' किया (निभाया) यह उस राजनेता की स्वयं की ''पर्सनैलिटी'' व मनःस्थिति पर निर्भर रहा। मु.मंत्री सुखाड़िया ने अपने सत्रह साल के शासन के प्रारम्भिक दिनों में पहले राष्ट्रदूत से राजनीतिक तरीके से निपटने का प्रयास किया। नवयुग अखबार शुरू करवाया, राष्ट्रदूत से मुकाबले के लिए, जिसके सम्पादक थे हरदेव जोशी।